एक कोशिका से पूरा जीव कैसे बनता है?

एम. महादेव

वर्ष 2002 का जीव विज्ञान-चिकित्सा विज्ञान का नोबल पुरस्कार सिडनी ब्रेनर, जॉन सुल्स्टन और रॉबर्ट हॉर्विट्ज़ को संयुक्त रूप से दिया गया था। इन वैज्ञानिकों ने जीवों के अंगों के निर्माण और कोशिकाओं की तयशुदा मृत्यु के सम्बंध में अनुसंधान करके महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मगर इनके योगदान के महत्व को समझने से पहले थोड़ा जीव विज्ञान समझ लेना आवश्यक है।

एक सवाल

जीव विज्ञान में एक महत्वपूर्ण समस्या यह समझने की है कि आखिर एक कोशिका में परिवर्तन कैसे होते हैं। मसलन एक निषेचित अण्डा (जो शुरू में मात्र एक कोशिका ही होता है) कैसे धीरे-धीरे विकसित होकर पूरा जीव बन जाता है। कैसे उसमें अलग-अलग किस्म की कोशिकाएं बनती हैं, ऊतक बनते हैं और अंग बनते हैं जो पूरे तालमेल से काम करते हैं। कोशिका को पता कैसे चलता है कि उसे क्या बनना है? क्या यह चीज़ कोशिका के जिनेटिक प्रोग्राम में ही पूर्व निर्धारित होती है? या क्या किसी कोशिका की नियति इस बात पर निर्भर है कि वह भ्रूण में किस जगह स्थित है? प्रथम तरीका मोज़ेइक विकास कहलाता है; इसमें प्रत्येक कोशिका में एक आंतरिक निर्देश होता है कि वह कोशिका क्या बनेगी। द्वितीय तरीका नियमन विकास कहलाता है जिसमें प्रत्येक कोशिका का विकास उसकी आसपास की कोशिकाओं के साथ परस्पर क्रिया से तय होता है। वास्तव में विकास इनमें से किस तरीके से होता है? या क्या विकास में एक मिले-जुले तरीके का उपयोग हो सकता है? यदि हां, तो क्या इन अलग-अलग तरीकों को पहचाना जा सकता है?

जंतु मॉडल या मॉडल जंतु

विकास जीव विज्ञान का विषय इन बुनियादी सवालों के जवाब पाने से सम्बंधित है। इनका उत्तर पाने के लिए हमें अध्ययन के लिए एक मॉडल तंत्र की आवश्यकता है। विकास सम्बंधी प्रारंभिक अध्ययनों में मॉडल तंत्र के रूप में उभयचर जन्तुओं के अण्डों का उपयोग किया जाता था। इन अध्ययनों से कई उपयोगी बातें पता चलीं। मसलन यह पता चला कि अण्डे में एक निहित असममिति (बेडौलता) होती है। यह भी पता चला कि भ्रूण की कुछ कोशिकाओं में यह क्षमता होती है कि उन्हें यदि भ्रूण में किसी अन्य जगह प्रत्यारोपित कर दें, तो भी वे निर्धारित ऊतक बना देती हैं।

हाल के समय में विकास के अध्ययन में जिनेटिक्स के उपयोग पर काफी अनुसंधान किया गया है। इन अध्ययनों में एक मक्खी *ड्रॉसोफिला* का उपयोग बहुतायत से किया गया है। इस संदर्भ में क्रिस्टिएन नुसलाइन-वोलहार्ड, एरिक विस्काउस और एडवर्ड बी. लुइस ने दर्शाया कि जिनेटिक कोड में कुछ मास्टर जीन्स होते हैं जो विकास प्रक्रिया का नियमन करते हैं। इसके अलावा उन्होंने यह भी पता लगाया कि अण्डे में मार्फोजेन्स होते हैं जो पैटर्न निर्माण में मदद करते हैं। इन वैज्ञानिकों को इस कार्य के लिए 1995 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

छोटी-सी मक्खी *ड्रॉसोफिला* लगभग एक सदी से जिनेटिक वैज्ञानिकों की प्रिय रही है। इसने क्लासिकल जिनेटिक्स और आण्विक जीव विज्ञान, दोनों क्षेत्रों में वैज्ञानिकों की मदद की और कई महत्वपूर्ण सवालों के अन्वेषण में भूमिका अदा की है। मगर इस मक्खी की साइज़ इन प्रयोगों की दृष्टि से काफी बड़ी है। इसलिए विकास के दौरान प्रत्येक कोशिका की नियति पता लगाना तो मुमकिन नहीं हुआ है मगर इसके विकसित होते भ्रूण के बड़े-बड़े हिस्सों के बारे में ज़रूर कुछ अंदाज़ लगाए गए हैं। भ्रूण के ऐसे हिस्सों को इमेजिनल डिस्क कहते हैं जो आगे चलकर अलग-अलग अंगों में तब्दील हो जाती हैं।

मगर प्रत्येक कोशिका की नियति पता लगाने के लिए

कोई अन्य मॉडल तंत्र ज़रूरी था जो बहुत बड़ी साइज़ का न हो मगर उसमें ऐसे शारीरिक लक्षण मौजूद हों कि विकास से सम्बंधित अध्ययन किए जा सकें। नोबल पुरस्कार विजेता सिडनी ब्रेनर ने साठ के दशक में इस मकसद से एक कृमि *सेनॉरहैबिडिस एलेगेन्स* पर प्रयोग शुरू किए। इस मॉडल का पूर्ण दोहन तो आगे चलकर होर्विट्ज़ और सुल्स्टन ने किया। उन्होंने इसका उपयोग करते हुए कोशिकाओं की वंशावली और विकास में जिनेटिक प्रक्रियाओं का पता लगाने में योगदान दिया। उनके अध्ययनों से जीव विज्ञान की एक और अहम प्रक्रिया का पता लगा - कोशिका की तयशुदा मृत्यु या प्रोग्राम्ड डेथ। इसका आशय यह है कि प्रत्येक कोशिका अपने विकास व वृद्धि के सामान्य क्रम में किसी खास मुकाम पर आकर मर जाती है। इन परिणामों का चिकित्सा व मानव स्वास्थ्य के कई पहलुओं से गहरा ताल्लुक है।

सिडनी ब्रेनर का कृमि

सिडनी ब्रेनर जीव विज्ञान में युगांतरकारी खोजों से जुड़े रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में जन्मे ब्रेनर ने डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि ऑक्सफर्ड की फिज़िकल केमेस्ट्री प्रयोगशाला से प्राप्त की थी। यह वह समय था जब जीन्स का नियमन करने वाले बुनियादी सिद्धांतों पर काम शुरू ही हुआ था। तब इस काम में बैक्टीरिया व बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों का अध्ययन किया जाता था।

1953 में वॉटसन और क्रिक द्वारा डी.एन.ए. की दोहरी कुण्डली की खोज के बाद जीव विज्ञान में एक महत्वपूर्ण सवाल यह था कि डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइड्स के क्रम और उसके द्वारा निर्मित प्रोटीन में अमीनो अम्ल के क्रम के बीच क्या सम्बंध है। एक सम्भावना यह थी कि यह सम्बंध तीन-तीन न्यूक्लियोटाइड के परस्पर व्याप्त कोड के ज़रिए है। यह मॉडल 1954 में जॉर्ज गैमॉव ने प्रस्तुत किया था। इसके मुताबिक डी.एन.ए. पर तीन क्षारों की एक तिकड़ी किसी एक अमीनो अम्ल की द्योतक होती है। ब्रेनर ने दर्शाया था कि इस कोड में ये तिकड़ियां परस्पर व्याप्त नहीं हो सकतीं क्योंकि वैसा होने पर प्रोटीन रचना बहुत सीमित हो जाएगी। फ्रांसिस क्रिक के साथ मिलकर उन्होंने 1961 में यह स्पष्ट किया कि तीन-तीन क्षारों की परस्पर स्वतंत्र तिकड़ियां एक-एक अमीनो अम्ल की द्योतक होती हैं। इसके अलावा ब्रेनर ने जेकब व मेसलसन के साथ मिलकर यह भी स्पष्ट किया कि डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के बीच एक कड़ी होती है जिसे संदेशवाहक आर.एन.ए. कहते हैं। अंततः 1964 में आनंद साराभाई व अन्य के साथ मिलकर ब्रेनर यह भी दर्शा पाने में सफल रहे कि डी.एन.ए. पर जीन शृंखला के क्रम और प्रोटीन में अमीनो अम्लों के क्रम के बीच एक-एक की संगति होती है।

इन उपलब्धियों के बाद ब्रेनर ने विकास की प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित किया। विकास सम्बंधी अध्ययनों के लिए एक छोटे मॉडल की तलाश उन्हें कृमि *सेनॉरहैबिडिस एलेगेन्स* तक ले गई।

यह कृमि करीब 1 मि.मी. लम्बा होता है और निषेचित अण्डे से पूरा कृमि बनने में तीन दिन का समय लगता है। प्रयोगशाला में एक पैट्री डिश में हज़ारों कृमि पाले जा सकते हैं। इस कृमि की एक और विशेषता ने ब्रेनर का ध्यान आकर्षित किया था। वयस्क कृमि दो प्रकार के होते हैं: एक नर तथा दूसरे द्विलिंगी। इनमें कुल कोशिकाओं की संख्या करीब 1000 होती है। इतने छोटे जीव में प्रत्येक कोशिका की नियति का पता लगाना आसान है। एक और रोचक बात यह है कि इस कृमि का शरीर पारदर्शी होता है। इस वजह से वृद्धि व विकास के दौरान इसकी प्रत्येक कोशिका को देखा जा सकता है।

1974 में ब्रेनर ने रिपोर्ट किया कि उन्होंने इथाइल मीथेन सल्फोनेट (इ.एम.एस.) नामक रसायन के प्रभाव से इस कृमि के 300 उत्परिवर्तित रूप प्राप्त किए हैं। इनमें शारीरिक व व्यवहारगत भिन्नताएं देखी गईं। इन उत्परिवर्तित कृमियों के विश्लेषण से 100 जीन्स पहचानने में मदद मिली - इनमें से 77 तो गति से सम्बंधित थे। द्विलिंगी कृमियों में स्व-प्रजनन करवाकर उत्परिवर्तन का जिनेटिक प्रकार पता लगाया जा सकता था ताकि नए जीनोटाइप बन सकें। अर्थात् ब्रेनर ने दर्शाया कि विकास के सामान्य अध्ययन में जिनेटिक्स से बहुत मदद मिल सकती है।

वैज्ञानिकों की सफलता का आकलन सिर्फ उनकी अपनी उपलब्धियों के आधार पर नहीं, बल्कि इस आधार पर भी किया जाता है कि उनके विचारों को अन्य लोग अपनाकर आगे कितना विकसित कर सकते हैं। कृमि मॉडल का उपयोग कई वैज्ञानिकों ने नई-नई बातों की खोज में किया।

सुल्स्टन और होर्विट्ज़

ओर्गेल प्रयोगशाला में जीवन की रासायनिक उत्पत्ति पर काम करने के बाद 1970 में सुल्स्टन ब्रेनर के दल में शामिल हो गए। सुल्स्टन का मूल लक्ष्य तंत्रिका कोशिकाओं के विकास के क्रम को पहचानना था। सूक्ष्मदर्शी तकनीक का उपयोग करते हुए वे वेन्ट्रल नर्व कॉर्ड की कोशिकाओं की वंशावली निर्मित कर सके। उसी प्रयोगशाला में काम कर रहे एक अन्य वैज्ञानिक व्हाइट ने कड़ी मेहनत करके यह पता लगा लिया था कि इस कृमि में कौन-सी तंत्रिका किससे जुड़ी है। इन अध्ययनों से पता चला कि तंत्रिका कोशिकाओं का विकास अपरिवर्तनीय है यानी किसी भी तंत्रिका कोशिका का विकास एक पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार होता है।

होर्विट्ज़ इस प्रयोगशाला में 1974 में आए थे और उन्होंने इसी तरह के अध्ययन मांसपेशियों की कोशिकाओं पर किए। मगर सूक्ष्मदर्शी में कोशिकाओं को देखकर अध्ययन करना होर्विट्ज़ के लिए नया अनुभव था। वे तो आण्विक जीव विज्ञान की तकनीकों से परिचित थे। बहरहाल, जल्दी ही उन्होंने कृमि के भ्रूण की मांसपेशी की कोशिका की वंशावली तैयार कर डाली। खास तौर से उन्होंने कृमि के अण्डा देने वाले छिद्र की मांसपेशियों की कोशिकाओं का पूरा विकास क्रम पता लगा लिया। 1977 तक सुल्स्टन और होर्विट्ज़ ने इस कृमि में भ्रूण से लेकर पूर्ण वयस्क बनने तक कोशिकाओं का पूरा विकास क्रम स्थापित कर लिया था।

वैसे तो यह एक ज़बर्दस्त उपलब्धि थी मगर इससे विकास की क्रियाविधि के बारे में कोई सुराग नहीं मिला। सुल्स्टन और होर्विट्ज़ अब अलग-अलग प्रयोगशालाओं में रहकर संयुक्त रूप से काम करते रहे। विकास की क्रियाविधि स्पष्ट करने के लिए दो तरीकों का उपयोग किया गया। एक तरीका यह था कि एक अत्यंत संकरे लेज़र पुंज की मदद से कुछ चुनिंदा कोशिकाओं को नष्ट करके फिर विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करना। इससे पता चला कि किसी कोशिका को समाप्त कर देने पर उससे बनने वाली सारी पुत्री कोशिकाएं भी नहीं बन पाती। अर्थात् अधिकांश मामलों में विकास का क्रम पूर्व निर्धारित होता है। अलबत्ता, कुछ मामलों में देखा गया कि पड़ोसी कोशिकाएं नष्ट कोशिका का स्थान ले लेती हैं - अर्थात् कभी-कभी एक नियमनकारी तरीका भी काम में आता है। जो कोशिकाएं एक-दूसरे का स्थान ले सकती हैं उन्हें एक तुल्य समूह का सदस्य कहा जाता है।

इसके बाद अगला काम था उन जीन्स को पहचानना जो कोशिकाओं के विभेदन में शामिल होते हैं ताकि इस प्रक्रिया का खुलासा हो सके। लक्ष्य था उन परिवर्तित जंतुओं को अलग करना जिनमें विकास का असामान्य पैटर्न नज़र आता है और इसके बाद उनकी कोशिकाओं के विकास का क्रम पता करना। ब्रेनर के शोध ने यह तो पहले ही दिखा दिया था कि उक्त कृमि के उत्परिवर्तित रूपों को अलग करना संभव है।

1980 में प्रकाशित एक साझा शोध पत्र में सुल्स्टन और होर्विट्ज़ ने पहली बार इस कृमि के एक उत्परिवर्तित रूप की कोशिकाओं की वंशावली स्थापित की थी। मसलन उन्होंने एक ऐसा उत्परिवर्तित कृमि तैयार किया जिसमें अण्डा देने सम्बंधी असामान्यता मौजूद थी। चूंकि अण्डा देने की प्रक्रिया जीवन के उत्तरार्ध में शुरू होती है इसलिए प्रारंभिक जीवन में इससे कृमि के कामकाज पर कोई असर नहीं होता। उन्होंने एक ऐसा उत्परिवर्तित कृमि तैयार किया जिसके अण्डा देने के छिद्र में कुछ गड़बड़ी थी। परिणाम यह होता था कि यह कृमि न तो मैथुन कर सकता था, न अण्डे दे सकता था। मगर हम देख चुके हैं कि द्विलिंगी कृमि अपने अण्डों का निषेचन स्वयं कर सकते हैं। इसके नतीजे अजीब होते हैं - सारे लार्वा उस कृमि के अंदर ही विकसित होते हैं। अंततः ये लार्वा उस कृमि को अन्दर से कुतरना शुरू कर देते हैं। कृमि मारा जाता है और लार्वा बाहर आ

जाता है। इसी प्रकार से एक कृमि ऐसा था जिसमें अण्डा देने वाले छिद्र एक से अधिक थे। इनकी मदद से मांसपेशियों के निर्माण के लिए ज़िम्मेदार जीन्स को पहचाना जा सका।

अपने अध्ययन के दौरान सुल्स्टन और होर्विट्ज़ ने एक अनोखी बात देखी। उन्होंने देखा कि द्विलिंगी कृमि में 959 कोशिका केंद्रक बनने के साथ 131 कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है। तंत्रिका तंत्र के मामले में कम से कम 20 प्रतिशत भावी तंत्रिका कोशिकाएं जिनेटिक रूप से पूर्व निर्धारित मृत्यु का शिकार होती हैं। इस तथ्य की पुष्टि 'कोशिका मृत्यु' के अभाव वाले उत्परिवर्तित कृमि के अध्ययन से हुई। कोशिका मृत्यु की दृष्टि से पहला उत्परिवर्तित कृमि सुल्स्टन ने पहचाना था और इसे एमयूसी-1 नाम दिया था। इस कृमि में उस न्यूक्लिएज़ एन्ज़ाइम का अभाव था जो डी.एन.ए. का विघटन करके पूर्व-निर्धारित कोशिका मृत्यु का कारण बनता है। कोशिका मृत्यु के लिए ज़िम्मेदार कई अन्य जीन्स भी सुल्स्टन और होर्विट्ज़ ने खोजे। इन उत्परिवर्तित कृमियों में वे कोशिकाएं नहीं मरतीं जिन्हें मर जाना चाहिए था। ये जीवित रहती हैं तो एक क्रम से विकास करती हैं। इससे पता चलता है कि विशिष्ट कोशिकाओं की मृत्यु इस कृमि में विकास के लिए ज़रूरी नहीं है।

होर्विट्ज़ के समूह ने एक और जीन का पता लगाया है। यदि इस जीन की अति-अभिव्यक्ति हो, तो पूर्व निर्धारित कोशिका मृत्यु टल जाती है। मगर जिन कृमियों में इस जीन में परिवर्तन हो जाएं, उनमें वे कोशिकाएं भी मरने लगती हैं जिन्हें नहीं मरना चाहिए और पूरा भ्रूण ही मर जाता है। शायद यह जीन (सीइडी-9) एक अवरोधक जीन है जो मृत्यु के लिए ज़िम्मेदार जीन्स की क्रिया को दबा देता है। इससे यह रोचक निष्कर्ष निकलता है कि शायद हर कोशिका के लिए मृत्यु प्रमुख विकल्प है मगर अवरोधक जीन की उपस्थिति में यह विकल्प टलता रहता है।

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर मानव सहित कई अन्य जन्तुओं में ऐसे जीन्स खोजे गए हैं। विकास के दौरान किसी भी कोशिश का व्यवहार उसके पर्यावरण से निर्देशित होता है। यदि इस प्रक्रिया के दौरान कोई कोशिका गलत जगह पर पहुंच जाए तो विकृतियां उत्पन्न हो सकती हैं। शरीर इन कोशिकाओं को हटाने का प्रयास करता है। उत्परिवर्तन युक्त कोशिकाओं को भी हटाना पड़ता है। पी-53 जैसे जीन का काम ही यह है कि जब जीनोम में टूट-फूट मरम्मत के काबिल न रहे तो इस कोशिका को मरने का निर्देश दे।

अधिकांश विभेदित कोशिकाएं आगे विभाजित नहीं होती और उन्हें उसी अवस्था में बने रहने के निर्देश मिलते रहते हैं। मगर कभी-कभी कोई कोशिका ऐसे सारे निर्देशों को अनसुना करके विभाजित होती चली जाती है। आम तौर पर यह एक गठान (कैंसर) का रूप ले लेती है। पूर्व निर्धारित कोशिका मृत्यु यानी एपोप्टोसिस में शामिल जीन्स व उनकी क्रियाविधि को समझने की कोशिशें पिछले एक दशक में काफी महत्वपूर्ण हो गई हैं। इस क्रियाविधि की समझ से भविष्य में कैंसर व अन्य रोगों के उपचार में काफी मदद मिल सकती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

सदस्यता शुल्क कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से एकलव्य, ई-7/ एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) 462 016 के पते पर भेजें।